[2019] 2 उम. नि. प. 64

जितेन्द्र उर्फ **कल्ला**

बनाम

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली राज्य

25 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – आजीवन कारावास – उच्च न्यायालय द्वारा दंडादेश में उपांतरण – उच्च न्यायालय, अपील न्यायालय के रूप में किसी हत्या के मामले में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित आजीवन कारावास को पहले से भुगत लिए गए कारावास तक उपांतरित नहीं कर सकता ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 427(2) – आजीवन कारावास – आजीवन कारावास के दो दंडादेशों के निरन्तर चलने का निदेश – हत्या के दो अपराधों में एक-साथ विचारण करने के पश्चात् एक सामान्य निर्णय द्वारा दोनों मामलों में आजीवन कारावास से दंडादिष्ट करते हुए दोनों दंडादेशों के निरन्तर चलने का निदेश देना उचित नहीं होगा बल्कि वे दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

प्रस्तुत मामले में अभियोजन-पक्ष के कथनानुसार अपीलार्थी ने 10 मार्च, 1999 को केशव पुरम पुलिस थाना क्षेत्र के भीतर विजय नामक व्यक्ति के विवाह सत्कार समारोह में अनिल बडाना नामक व्यक्ति की हत्या की थी । अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त, सुमित नायर पुत्र कीमती लाल नायर उक्त घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था और उसने तुरंत पी.सी.आर. को कॉल करके इस हत्या के बारे में पुलिस को सूचित किया था जिसमें उसने विनिर्दिष्ट रूप से अपीलार्थी को ऐसे व्यक्ति के रूप में नामित किया था जिसने अपराध कारित किया था । अभियोजन-पक्ष के अनुसार, इस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी को भी समाप्त करने की दृष्टि से, अपीलार्थी 10 मार्च और 11 मार्च, 1999 के बीच वाली उसी रात को लगभग 12.30 पूर्वाह्न मुखर्जी नगर, दिल्ली में सुमित नायर के घर पर

गया और दरवाज़े की घंटी बजाई । सुमित के पिता, कीमती लाल नायर यह देखने के लिए बाहर आए कि किस व्यक्ति ने उसके घर के दरवाज़े की घंटी बजाई है, तभी किसी ने बन्दूक से उस पर फायर किया और उसके शरीर में तीन गोलियां लगीं । अन्वेषण से यह प्रकट हुआ कि अपीलार्थी ने ही कीमती लाल नायर को भी मारा था । अपीलार्थी के विरुद्ध दो प्रथम इत्तिला रिपोर्टें दर्ज की गईं । विचारण न्यायालय ने दोनों मामलों में दोषिता संबंधी निष्कर्ष अभिलिखित करने और अपीलार्थी को 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67 में उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के लिए दोषसिद्ध करने के पश्चात्, अपीलार्थी को इस निदेश सहित आजीवन कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था कि उसके संबंध में तब तक परिहार (माफी) की मंजूरी के लिए विचार नहीं किया जाएगा जब तक वह 30 वर्ष का वास्तविक दंडादेश भुगत नहीं लेता और 3 लाख रुपए के जुर्माने की राशि जमा नहीं करा देता । जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर तीन वर्ष की अवधि का अतिरिक्त साधारण कारावास अधिनिर्णीत किया गया था । 3 लाख रुपए के उपर्युक्त जुर्माने में से एक लाख रुपए की राशि राज्य को संदत्त की जानी थी और शेष 2 लाख रुपए की राशि मृतक – अनिल बडाना के कुटुम्ब को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त करने का निदेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आने वाले अपराधों के लिए अपीलार्थी को 10 वर्ष के कठोर कारावास और एक लाख रुपए के जुर्माने से और जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष की अवधि के अतिरिक्त साधारण कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । ये दंडादेश निरन्तर चलने हैं । जहां तक 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68 का संबंध है, अपीलार्थी को आजीवन कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडादिष्ट किया गया था और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह दंडादेश उसके बकाया जीवन के लिए है और इस मामले में भी उसे 3 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने का भी निदेश दिया गया था, जिसे उसी रीति में बांटा जाना था, अर्थात्, एक लाख रुपए राज्य को और 2 लाख रुपए मृतक – कीमती लाल नायर के कुटुम्ब को संदत्त किए जाने थे । विचारण न्यायालय ने यह भी निदेश दिया कि इस मामले में दंडादेश 1999 की प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट सं. 67 में अधिरोपित दंडादेश के समाप्त होने के पश्चात् और उसके परिणामस्वरूप आरंभ होगा । अपीलार्थी ने, इन दोषसिद्धियों के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष दो अपीलें फाइल कीं, जिनका विनिश्चय एक सामान्य निर्णय द्वारा किया गया था । बहस के दौरान, अपीलार्थी के काउन्सेल ने न्यायालय में इस आशय का कथन किया कि अपीलार्थी का आशय विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि संबंधी निष्कर्षों को चुनौती देना नहीं था और उसने अपनी दलीलें केवल दंडादेश से संबंधित भाग तक ही सीमित रखीं । तथापि, उच्च न्यायालय ने अभियोजन-पक्ष द्वारा दोनों मामलों में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार किया और यह टिप्पणी की कि अपीलार्थी को ठीक ही दोषसिद्ध किया गया था । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले में दिए गए संबंधित दंडादेशों के प्रश्न की परीक्षा की । उच्च न्यायालय ने, उन कारणों का उल्लेख करने के पश्चात् जो विचारण न्यायालय द्वारा दोनों मामलों में विनिर्दिष्ट दंडादेश देने के लिए दिए गए थे, यह निष्कर्ष निकाला कि दो व्यापक विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत होते हैं – (i) प्रथम विवाद्यक जो विचारार्थ उद्भूत हुआ, यह था कि क्या विचारण न्यायालय के इस आदेश में कि दोनों दंडादेश निरन्तर चलेंगे हस्तक्षेप करना अपेक्षित है अथवा नहीं? (ii) यदि दोनों दंडादेश निरन्तर नहीं चलने हैं तो क्या दोनों अपीलों में दंडादेश संबंधी आदेश में हस्तक्षेप करना अपेक्षित है? जहां तक विवाद्यक सं. (i) का संबंध है, उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) के उपबंधों के प्रति निर्देश किया जिनके आधार पर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि ये दंडादेश निरन्तर नहीं चलने थे । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने विवाद्यक सं. (ii) का उल्लेख किया और यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंड अत्यधिक प्रकृति के हैं और उसने 30 वर्ष की सीमा को हटा कर उसे उपांतरित कर दिया और अपीलार्थी को उतनी अवधि के लिए जितनी वे पहले ही भुगत चुका है, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास, दंडादिष्ट किया । अपीलार्थी को तुरंत रिहा करने का निदेश दिया गया था यदि उसकी किसी अन्य मामले में अपेक्षा न हो । उपर्युक्त निर्णय तारीख 24 दिसम्बर, 2016 को दिया गया था । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने इस मामले को स्वप्रेरणा से तारीख 14

फरवरी, 2017 को निदेशों के लिए सूचीबद्ध किया क्योंकि उसके अनुसार, उक्त निर्णय में टंकण संबंधी एक त्रुटि पाई गई थी । यह आदेश पारित किया गया कि तारीख 24 दिसम्बर, 2016 को निर्णय दिए जाने के पश्चात् उसके अंतिम प्रभाग में टंकण संबंधी एक त्रुटि पाई गई थी । इस त्रुटि में सुधार किया जाता है और निम्नलिखित विषयेत्तर वाक्य शामिल हो गए थे और उन्हें हटाया जाता है. अर्थात् "...उतनी अवधि के लिए जितनी अपीलार्थी पहले भुगत चुका है, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास ।" और".....अपीलार्थी को तुरंत रिहा किया जाए, यदि उसकी किसी अन्य मामले में अपेक्षा न हो ...."। इन अपीलों में, दोनों उपर्युक्त आदेशों को चुनौती दी गई है । अपीलार्थी ने, जहां तक दोनों मामलों में किए गए विचारण का संबंध है, अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी है । यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के आदेशों से संतुष्ट था जिनके अनुसार उसे वह दंडादेश पूरा होने पर, जो कि वह पहले ही भुगत चुका था, रिहा कर दिया गया था । तथापि, तारीख 14 फरवरी, 2017 को उक्त आदेश में सुधार किए जाने के पश्चात्, उसने दोषसिद्धि को भी चुनौती देने का विकल्प अपनाया और वर्तमान अपीलें फाइल कीं । अन्य दो अपीलें आहत व्यक्तियों के कुटुम्बों द्वारा तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश में किए गए उपांतरण को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई हैं । यद्यपि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई विशेष इजाजत याचिकाओं में सूचना तारीख 7 अप्रैल, 2017 को जारी की गई थी तथापि, उच्चतम न्यायालय ने तारीख 14 फरवरी, 2017 के आदेशों पर रोक लगाने से इनकार कर दिया और अपीलार्थी को अभ्यर्पण करने का निदेश दिया । यह अभिव्यक्त करते हुए उसे जमानत के लिए आवेदन करने के लिए अनुज्ञात किया गया कि उस पर उसके गुणागुण के आधार पर विचार किया जाएगा । तद्नुसार, अपीलार्थी ने अभ्यर्पण कर दिया और इस समय वह कारागार में है । अपीलार्थी ने जमानत के लिए आवेदन फाइल किया था । तथापि, न्यायालय ने उक्त आवेदन में तर्क सुनने की बजाय इन अपीलों पर अंतिम रूप से सुनवाई करने का विनिश्चय किया । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की अपीलों को खारिज करते हुए और परिवादियों और राज्य की अपीलों को भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों प्रथम इत्तिला रिपोर्टों में, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का आरोप था । विचारण न्यायालय द्वारा दोनों आरोपों के संबंध में दोषसिद्धि अभिलिखित की गई थी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्ट किया गया था । हत्या के अपराध के लिए न्यूनतम दंडादेश आजीवन कारावास है । उच्च न्यायालय, स्पष्टतः उस कारण से दंडादेश को पहले से भुगते गए दंडादेश तक उपांतरित नहीं कर सकता था । अतः, उपर्युक्त रीति में किया गया उपांतरण, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया था, स्पष्टतया त्रुटिपूर्ण है । वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस गलती को महसूस किया और इसलिए उसने तारीख 14 फरवरी, 2017 के आदेश द्वारा इस गलती में सुधार करके आदेश में संशोधन किया । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा उठाया गया वह कदम उसकी अधिकारिता के परे था । यह केवल अपील में ही किया जा सकता था । वह कार्यवाही निश्चित रूप से इस न्यायालय द्वारा आदेश के उस भाग को अपास्त करके की जाती है । परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय का वह आदेश, जिसके द्वारा 30 वर्ष की अधिकतम सीमा को हटाया गया था, सही नहीं है और उस भाग को अपास्त करना होगा । (पैरा 25 और 32)

प्रथम आरोप पत्र में प्रथम अपराध की बाबत विचारण न्यायालय ने आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करते समय 30 वर्ष की अधिकतम सीमा लगाई जिसके द्वारा स्पष्ट रूप से यह कहा गया कि उससे पहले परिहार अनुज्ञेय नहीं होगा । पुनः, दूसरे मामले में आजीवन कारावास अधिरोपित करते समय उसने यह कहा कि दंडादेश संपूर्ण जीवन के लिए होगा और वह प्रथम अपराध में पारित दंडादेश के पूरा होने के पश्चात् ही प्रारंभ होगा । दूसरे शब्दों में, उसने क्रमवर्ती दंडादेश न कि समवर्ती दंडादेश अधिनिर्णीत किए । दोनों मामलों का विचारण एक साथ किया गया था । सामान्य निर्णय द्वारा दोषसिद्धि लेखबद्ध की गई थी । इसी प्रकार, दंडादेश भी एक सामान्य आदेश द्वारा अभिलिखित किए गए थे । इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर सही किया कि क्रमवर्ती दंडादेश देने का कोई प्रश्न नहीं है और दंडादेश समवर्ती होंगे । (पैरा 28 और 29)

तारीख 14 फरवरी, 2017 का वह आदेश, जिसके द्वारा तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के मुख्य निर्णय में से दो पंक्तियां हटा दी गई थीं, न्यायिक संवीक्षा पर खरा नहीं उतरता है चूंकि किसी भी कल्पनाशक्ति से इसे टंकण संबंधी त्रुटि नहीं माना जा सकता है । जब तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय को दंडादेश के मुद्दे के संबंध में समग्र रूप से पढ़ा जाए तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है उच्च न्यायालय ने अपने विवेकानुसार दंडादेश संबंधी आदेश को उस अवधि तक, जितनी पहले भुगत ली गई है, उपांतरित करना उचित समझा । उच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया । इसके पश्चात्, पैरा 61 में उसने स्पष्टतः यह प्रकथन किया कि सभ्य समाज में दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय दांत के बदले में दांत और आंख के बदले में आंख निकालने की कसौटी नहीं होनी चाहिए । उसने यह भी मत व्यक्त किया कि न्यायालय से ऐसा दंडादेश पारित करने की अपेक्षा थी जो कि न तो निष्पक्ष रूप से घोर हो और न ही प्रत्यक्षतः अपर्याप्त हो । इस प्रयोजनार्थ, इससे अपराध की प्रकृति को सम्यक् रूप से ध्यान में रखने और उत्तेजक और शमनकारी परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाने की अपेक्षा है । इस विचार-विमर्श के पश्चात्, न्यायालय ने दंडादेश संबंधी आदेश को निम्नलिखित रीति में उपांतरित कर दिया कि संदर्भात्मक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उपर्युक्त सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् और अपराध की प्रकृति और अपनाई गई पद्धति को ध्यान में रखते हुए, मृत्यु की शास्ति के विकल्प के रूप में किसी विनिर्दिष्ट अवधि के कारावास या दोषसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु तक का उपबंध करने वाला कोई उपांतरित दंडादेश अधिरोपित करने की शक्ति का प्रयोग मामले के तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है । इसके अलावा, इस मामले में अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंड, स्थिति की अपेक्षा के आधिक्य में है और इसलिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा पेश किए गए शमनकारी तथ्य अपीलार्थी पर दया दिखाने के लिए हैं । न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 30 वर्ष की अधिकतम सीमा को हटाया जाना चाहिए । अतः, दंडादेश संबंधी आदेश को अपीलार्थी द्वारा पहले से भुगते गए कारावास की अवधि, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास तक उपांतरित करते हैं । यह अभिनिर्धारित करने के लिए और अधिक

विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं है कि उपर्युक्त पैरा में अंतिम वाक्य, जिसके द्वारा न्यायालय ने दंडादेश को उस अवधि तक उपांतरित किया जितनी अवधि का कारावास पहले भुगत लिया गया था, अर्थात्, 16 वर्ष और 10 मास, टंकण संबंधी त्रुटि नहीं थी । (पैरा 23 और 24)

परिणामस्वरूप तारीख 14 फरवरी, 2017 का आदेश अपास्त किया जाता है । जहां तक तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय का संबंध है, उच्च न्यायालय द्वारा दंडादेश में किए गए उपांतरण को अपास्त किया जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत, परिहार के बिना 30 वर्ष की अधिकतम सीमा सहित आजीवन कारावास को कायम रखा जाता है । इसके अलावा, उच्च न्यायालय का वह आदेश भी, जिसके द्वारा दंडादेश को पहले से भुगते गए दंडादेश तक उपांतरित कर दिया गया था, अपास्त किया जाता है । उच्च न्यायालय का तारीख 24 दिसम्बर, 2016 का शेष निर्णय कायम रखा जाता है । इसका प्रभाव यह है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि को कायम रखा जाता है । तथापि, दोनों मामलों में दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । इसका अंतिम प्रभाव यह होगा कि अपीलार्थी को दोनों मामलों में इस शर्त के साथ आजीवन कारावास दिया जाता है कि 30 वर्ष का कठोर कारावास पूरा करने तक उसके पास परिहार की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं होगा । (पैरा 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 8 एस. सी. सी. 313 : **मुतुरामलिंगम और अन्य** बनाम **राज्य, जिसका प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक द्वारा किया गया** ;	19,31
[2016]	(2016) 7 एस. सी. सी. 1= (2015) 13 स्केल: **भारत संघ** बनाम **वी. श्रीहरण** उर्फ **मुरूगन और अन्य** ;	7,18,30
[2016]	(2016) 6 एस. सी. सी. 296 : **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	7

[2014] (2014) 3 एस. सी. सी. 421 :
बिरजू बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 7

[2014] (2014) 3 जे. सी. सी. 2282:
सुमेर सिंह बनाम **सूरजभान और अन्य** ; 7

[2013] (2013) 11 एस. सी. सी. 489 :
जीतू उर्फ **जितेन्द्र और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**; 15

[2013] (2013) 2 स्केल 533 :
गोपाल सिंह बनाम **उत्तराखंड राज्य** ; 8

[2010] (2010) 12 एस. सी. सी. 532 :
जमील बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 8

[2008] (2008) 13 एस. सी. सी. 767 :
स्वामी श्रद्धानंद (II) बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 7

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 582 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **बाबूलाल** ; 8

[2007] (2007) 12 एस. सी. सी. 288 :
स्वामी श्रद्धानंद (I) बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 7

[1982] (1982) 2 एस. सी. सी. 463 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **श्रीनिवास नायक और एक अन्य** ; 19

[1958] ए. आई. आर. 1958 इलाहाबाद 198 :
दुल्ला और अन्य बनाम **राज्य** । 8

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 2133. (इसके साथ 2017 की दांडिक अपील सं. 2135, 2136, 2134, 2139, 2137-2138 भी सुनी गई ।)

2013 की दांडिक अपील सं. 966 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से

सर्वश्री एन. एन. एस. नादकर्णी, अपर महासालिसिटर, (सुश्री) विभा दत्त मखीजा, संजय आर. हेग्ड़े, (सुश्री) किरन सूरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, मनीष कुमार, पीयूष कौशिक, अमित कुमार, नकुल जैन, वाई. शरतचन्द, वरुण कपूर, (सुश्री) दिव्या राय, प्रशांत भूषण, ए. रोबिन सिंह, रंधीर कुमार, विवेक कुमार, नवीन कुमार, कुमार मिहिर, प्रांजल किशोर, बी. वी. बलराम दास, ए. के. श्रीवास्तव, आर. के. वर्मा, एस. के. पाठक और बी. कृष्ण प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – 2017 की दांडिक अपील सं. 2133 और 2017 की दांडिक अपील सं. 2134 जितेन्द्र **उर्फ** कल्ला द्वारा (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अपीलार्थी" कहा गया है) फाइल की गई हैं, जिसके विरुद्ध दो प्रथम इत्तिला रिपोर्टें, अर्थात्, भारतीय दंड संहिता की धारा 302/307/34 के अधीन 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67 और भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख/302 के अधीन 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68 रजिस्ट्रीकृत की गई थीं । दोनों घटनाओं में अन्वेषण करने और आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात्, उपर्युक्त उपबंधों के अधीन आरोप विरचित किए गए थे और विचारण हुआ था । विचारण न्यायालय ने तारीख 1 जुलाई, 2013 के सामान्य निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया था । यद्यपि हम उन तथ्यों का उल्लेख, जो इन अपीलों के लिए सुसंगत हैं, इसमें इसके पश्चात् कुछ विस्तारपूर्वक करेंगे, तथापि, इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि अभियोजन-पक्ष के कथनानुसार अपीलार्थी ने तारीख 10 मार्च, 1999 को केशव पुरम पुलिस थाना क्षेत्र के भीतर विजय नामक व्यक्ति के विवाह सत्कार समारोह में अनिल बडाना नामक व्यक्ति की हत्या की थी । अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त, सुमित नायर पुत्र कीमती लाल

नायर उक्त घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था और उसने तुरंत पी.सी.आर. को कॉल करके अनिल बडाना की हत्या के बारे में पुलिस को सूचित किया था जिसमें उसने विनिर्दिष्ट रूप से अपीलार्थी को ऐसे व्यक्ति के रूप में नामित किया था जिसने अपराध कारित किया था । अभियोजन-पक्ष के अनुसार, इस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी को भी समाप्त करने की दृष्टि से, अपीलार्थी 10 मार्च और 11 मार्च, 1999 के बीच वाली उसी रात को लगभग 12.30 पूर्वाह्न मुखर्जी नगर, दिल्ली में सुमित नायर के घर पर गया और दरवाज़े की घंटी बजाई । सुमित के पिता, कीमती लाल नायर यह देखने के लिए बाहर आए कि किस व्यक्ति ने उसके घर के दरवाज़े की घंटी बजाई है, तभी किसी ने बन्दूक से उस पर फायर किया और उसके शरीर में तीन गोलियां लगीं । अन्वेषण से यह प्रकट हुआ कि अपीलार्थी ने ही कीमती लाल नायर को भी मारा था । ऊपर उल्लिखित दो प्रथम इत्तिला रिपोर्टें इन दो घटनाओं से संबंधित हैं ।

2. दोनों मामलों में दोषिता संबंधी निष्कर्ष अभिलिखित करने और अपीलार्थी को 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67 में उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के लिए दोषसिद्ध करने के पश्चात्, अपीलार्थी को इस निदेश सहित आजीवन कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था कि उसके संबंध में तब तक परिहार (माफी) की मंजूरी के लिए विचार नहीं किया जाएगा जब तक वह 30 वर्ष का वास्तविक दंडादेश भुगत नहीं लेता और 3 लाख रुपए के जुर्माने की राशि जमा नहीं करा देता । जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर तीन वर्ष की अवधि का अतिरिक्त साधारण कारावास अधिनिर्णीत किया गया था । 3 लाख रुपए के उपर्युक्त जुर्माने में से एक लाख रुपए की राशि राज्य को संदत्त की जानी थी और शेष 2 लाख रुपए की राशि मृतक – अनिल बडाना के कुटुम्ब को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त करने का निदेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आने वाले अपराधों के लिए अपीलार्थी को 10 वर्ष के कठोर कारावास और एक लाख रुपए के जुर्माने से और जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष की अवधि के अतिरिक्त साधारण कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । ये दंडादेश साथ-साथ चलने हैं ।

जहां तक 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68 का संबंध है, अपीलार्थी को आजीवन कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडादिष्ट किया गया था और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह दंडादेश उसके बकाया जीवन के लिए है और इस मामले में भी उसे 3 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने का भी निदेश दिया गया था, जिसे उसी रीति में बांटा जाना था, अर्थात्, एक लाख रुपए राज्य को और 2 लाख रुपए मृतक – कीमती लाल नायर के कुटुम्ब को संदत्त किए जाने थे । विचारण न्यायालय ने यह भी निदेश दिया कि इस मामले में दंडादेश 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67 में अधिरोपित दंडादेश के समाप्त होने के पश्चात् और उसके परिणामस्वरूप आरंभ होगा ।

3. अपीलार्थी ने, इन दोषसिद्धियों के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष दो अपीलें फाइल कीं, जिनका विनिश्चय तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के एक सामान्य निर्णय द्वारा किया गया था । बहस के दौरान, अपीलार्थी के काउन्सेल ने न्यायालय में इस आशय का कथन किया कि अपीलार्थी का आशय विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि संबंधी निष्कर्षों को चुनौती देना नहीं था और उसने अपनी दलीलें केवल दंडादेश से संबंधित भाग तक ही सीमित रखीं ।

4, तथापि, उच्च न्यायालय ने अभियोजन-पक्ष द्वारा दोनों मामलों में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार किया और यह टिप्पणी की कि अपीलार्थी को ठीक ही दोषसिद्ध किया गया था ।

5. इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले में दिए गए संबंधित दंडादेशों के प्रश्न की परीक्षा की । इस शर्त वाले आजीवन कारावास के दंडादेश को कि अपीलार्थी को किसी परिहार के बिना 30 वर्ष का वास्तविक कारावास और दूसरे मामले में आजीवन कारावास भुगतना होगा, चुनौती देने वाले अपीलार्थी के काउन्सेल के इस तर्क को कि उससे यह अभिप्रेत है कि यह कारावास उसके शेष जीवन के लिए होगा, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा चुनौती दी गई थी ।

6. उच्च न्यायालय ने, उन कारणों का उल्लेख करने के पश्चात् जो

विचारण न्यायालय द्वारा दोनों मामलों में विनिर्दिष्ट दंडादेश देने के लिए दिए गए थे, यह निष्कर्ष निकाला कि दो व्यापक विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत होते हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

(i) प्रथम विवाद्यक जो विचारार्थ उद्भूत हुआ, यह था कि क्या विचारण न्यायालय के इस आदेश में कि दोनों दंडादेश निरन्तर चलेंगे हस्तक्षेप करना अपेक्षित है अथवा नहीं?

(ii) यदि दोनों दंडादेश निरन्तर नहीं चलने हैं तो क्या दोनों अपीलों में दंडादेश संबंधी आदेश में हस्तक्षेप करना अपेक्षित है?

7. जहां तक विवाद्यक सं. (i) का संबंध है, उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) के उपबंधों के प्रति निर्देश किया जिनके आधार पर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि ये दंडादेश निरन्तर नहीं चलने थे । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने विवाद्यक सं. (ii) का उल्लेख किया और इस प्रक्रिया में विभिन्न निर्णयों का भी उल्लेख किया, जैसे कि **स्वामी श्रद्धानंद (I)** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1], **स्वामी श्रद्धानंद (II)** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2], **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य**[3], **भारत संघ** बनाम **वी. श्रीहरण** उर्फ **मुरूगन और अन्य**[4], **बिरजू** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[5] और **सुमेर सिंह** बनाम **सूरजभान और अन्य**[6] और इन निर्णयों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त रीति में दंडादेश अधिनिर्णीत करके अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया था । इस संबंध में किया गया विचार-विमर्श उच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 52 में अंतर्विष्ट है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

"55. उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा भारत संघ **बनाम** वी. श्रीहरण **उर्फ** मुरूगन और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को ध्यान में रखते

---

[1] (2007) 12 एस. सी. सी. 288.

[2] (2008) 13 एस. सी. सी. 767.

[3] (2016) 6 एस. सी. सी. 296.

[4] (2016) 7 एस. सी. सी. 1= (2015) 13 स्केल.

[5] (2014) 3 एस. सी. सी. 421.

[6] (2014) 3 जे. सी. सी. 2282.

हुए, विशेष रूप से जैसा कि उसके पैरा 103 और पैरा 104 में अभिनिर्धारित किया गया है, हमारा यह मत है कि विचारण न्यायालय ने अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया था । अन्यथा भी, हमारा यह मत है कि इस मामले में विचारण न्यायालय ने एक पूर्व-निर्धारित विवेक के साथ उसी दिन दंडादेश का आदेश पारित करके अधिक जल्दबाज़ी में कार्य किया है । विचारण न्यायालय को, मामले की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त के काउन्सेल को दंडादेश के संबंध में अपने तर्क प्रस्तुत करने का युक्तियुक्ति अवसर अनुज्ञात करना चाहिए था । विचारण न्यायालय ने अत्यधिक उतावलापन दिखाया और विधि को भी गलत रूप में लागू किया । हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि उच्चतम न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने भारत संघ **बनाम** वी. श्रीहरण **उर्फ** मुरूगन और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि स्वामी श्रद्धानंद (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित यह विनिश्चयाधार सुआधारित है कि मृत्यु की बजाय 14 वर्ष से अधिक अवधि के विशेष प्रवर्ग के कारावास का दंडादेश दिया जाए और उस प्रवर्ग को परिहार (माफी) लागू करने से परे रखा जाए । हमने ऊपर स्वामी श्रद्धानंद (II) **बनाम** कर्नाटक राज्य वाले मामले में पूर्वगामी पैरा 92 को उद्धृत किया है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने ऐसी स्थिति पर विचार किया था जहां दंडादेश अत्यधिक और सम्यक्त: कठोर हो सकता है या अननुपात में अत्यधिक अपर्याप्त हो सकता है । न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि कोई मामला विरल से विरलतम प्रवर्ग से कम प्रतीत होता है । किन्तु इसके साथ-साथ, न्यायालय अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए प्रबल रूप से यह महसूस कर सकता है कि परिहार के अधीन रहते हुए आजीवन कारावास, जो कि सामान्यतः 14 वर्ष की अवधि का होता है, अत्यंत अननुपाती और अपर्याप्त हो सकता है । इस असमंजस की स्थिति में दो विकल्प होते हैं, अर्थात् या तो मृत्यु दंडादेश या 14 वर्ष से अनधिक का जीवन, न्यायालय मृत्यु दंडादेश पारित करने का मार्ग अपना सकता है । न्यायालय ने ऐसे पूर्वाग्रह से सतर्क किया और ऐसी

स्थिति को विनाशकारी पाया और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय विस्तारित विकल्प का सहारा लेगा ।"

8. इसके पश्चात् न्यायालय ने दोनों मामलों की उन परिस्थितियों में, जिनमें अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया था, दंडादेश की पर्याप्तता पर विचार किया और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का परिशीलन किया । (**मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **बाबूलाल**[1], **जमील** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2], **गोपाल सिंह** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[3] और **दुल्ला और अन्य** बनाम **राज्य**[4])

9. उच्च न्यायालय द्वारा जिन निर्णयों का उल्लेख किया था, उनमें अधिकथित सिद्धांतों का उल्लेख करने के पश्चात् न्यायालय ने स्थिति का सार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया :-

"हमारा यह विश्वास है कि एक सभ्य समाज में यह कसौटी नहीं होनी चाहिए कि दांत के बदले में दांत और आंख के बदले में आंख निकाल ली जाए और इसलिए आजीवन कारावास के संबंध में किसी प्रकार की जल्दबाज़ी करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होगा; बल्कि हमारे विधिशास्त्र में इस तथ्य का वर्णन है कि विधि न्यायालय इस दिशा में धीमे हैं और इस परिप्रेक्ष्य में अपराध की गंभीरता और दंडादेश के बीच युक्तियुक्त अनुपात बनाए रखना होगा । जबकि यह सही है कि अननुपातिक रूप से गंभीर दंड पारित नहीं किया जाना चाहिए किन्तु यह विधि न्यायालयों को तथापि, ऐसा दंडादेश अधिनिर्णीत करने की राय से आच्छादित भी नहीं करता जो कि अपराध की प्रकृति का सम्यक् रूप से ध्यान रखते हुए प्रत्यक्ष रूप से अपर्याप्त होगा चूंकि किसी अपर्याप्त दंडादेश से समाज के प्रति न्याय के हेतु की पूर्ति नहीं होगी । न्यायालय उत्तेजित करने और शमन करने वाली परिस्थितियों का तुलनपत्र तैयार करेगा । इन दोनों पहलुओं को अपना-अपना महत्व दिया जाना है । न्यायालय

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 582.

[2] (2010) 12 एस. सी. सी. 532.

[3] (2013) 2 स्केल 533.

[4] ए. आई. आर. 1958 इलाहाबाद 198.

को इन दोनों के बीच संतुलन बनाए रखना है और यह देखना है कि न्याय का पलड़ा किसकी ओर झुकता है । अपराध और दंड के बीच अनुपात का सिद्धांत न्यायसंगत परिणाम (जहां अच्छाई की बुराई पर जीत हो) का सिद्धांत है जो कि ऐसे प्रत्येक आपराधिक दंडादेश की आधारशिला है जो कि न्याय्य है । दूसरे शब्दों में, "आनुपातिकता के सिद्धांत" का भारतीय दांडिक न्यायशास्त्र के अधीन दंडादेश देने की नीति का मूल्यवान उपयोजन होता है । इस प्रकार, न्यायालय को न केवल इस बात की परीक्षा करनी होगी कि न्यायसंगत क्या है किन्तु इस बात की भी परीक्षा करनी होगी कि व्यापक रूप से समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त किस दंड का पात्र है ।"

10. उपर्युक्त सिद्धांतों को लागू करने पर, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंड अत्यधिक प्रकृति के हैं और उसने 30 वर्ष की सीमा को हटा कर उसे उपांतरित कर दिया और अपीलार्थी को उतनी अवधि के लिए जितनी वे पहले ही भुगत चुका है, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास, दंडादिष्ट किया । अपीलार्थी को तुरंत रिहा करने का निदेश दिया गया था यदि उसकी किसी अन्य मामले में अपेक्षा न हो । उपर्युक्त निर्णय तारीख 24 दिसम्बर, 2016 को दिया गया था । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने इस मामले को स्वप्रेरणा से तारीख 14 फरवरी, 2017 को निदेशों के लिए सूचीबद्ध किया क्योंकि उसके अनुसार, उक्त निर्णय में टंकण संबंधी एक त्रुटि पाई गई थी । उस दिन निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था :–

"यह मामला आज निदेशों के लिए सूचीबद्ध किया गया है । यह निर्णय तारीख 24 दिसम्बर, 2016 को दिए जाने के पश्चात् उसके अंतिम प्रभाग में टंकण संबंधी एक त्रुटि पाई गई थी । इस त्रुटि में सुधार किया जाता है और जो विषयेतर वाक्य शामिल हो गया था, उसे हटाया जाता है ।

"..... उतनी अवधि के लिए जितनी अपीलार्थी पहले भुगत चुका है, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास ।"

".....अपीलार्थी को तुरंत रिहा किया जाए, यदि उसकी किसी अन्य मामले में अपेक्षा न हो ...."

अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल श्री शर्मा ने यह निवेदन किया है कि उसका अपीलार्थी से कोई संपर्क नहीं है ।

इस आदेश की एक प्रति कोर्ट मास्टर के हस्ताक्षर के अधीन अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार को समुचित कार्रवाई के लिए भेजी जाए और एक प्रति पक्षकारों के काउन्सेल को दस्ती भी दी जाए ।"

11. इन दोनों अपीलों में, दोनों उपर्युक्त आदेशों को चुनौती दी गई है । अपीलार्थी ने, जहां तक दोनों मामलों में किए गए विचारण का संबंध है, अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी है । यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के आदेशों से संतुष्ट था जिनके अनुसार उसे वह दंडादेश पूरा होने पर, जो कि वह पहले ही भुगत चुका था, रिहा कर दिया गया था । तथापि, तारीख 14 फरवरी, 2017 को उक्त आदेश में सुधार किए जाने के पश्चात्, उसने दोषसिद्धि को भी चुनौती देने का विकल्प अपनाया और वर्तमान अपीलें फाइल कीं । अन्य दो अपीलें आहत व्यक्तियों के कुटुम्बों द्वारा तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश में किए गए उपांतरण को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई हैं ।

12. हम यह अभिलिखित कर सकते हैं कि यद्यपि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई विशेष इजाजत याचिकाओं में सूचना तारीख 7 अप्रैल, 2017 को जारी की गई थी तथापि, इस न्यायालय ने तारीख 14 फरवरी, 2017 के आदेशों पर रोक लगाने से इनकार कर दिया और अपीलार्थी को अभ्यर्पण करने का निदेश दिया । यह अभिव्यक्ति करते हुए उसे जमानत के लिए आवेदन करने के लिए अनुज्ञात किया गया कि उस पर उसके गुणागुण के आधार पर विचार किया जाएगा । तदनुसार, अपीलार्थी ने अभ्यर्पण कर दिया और इस समय वह कारागार में है । अपीलार्थी ने जमानत के लिए आवेदन फाइल किया था । तथापि, न्यायालय ने उक्त आवेदन में तर्क सुनने की बजाय इन अपीलों पर अंतिम रूप से सुनवाई करने का विनिश्चय किया । इस प्रकार मामलों

पर गुणागुण के आधार पर सुनवाई की गई थी ।

13. उपर्युक्त संदर्भ में, तीन प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुए हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

(i) क्या अपीलार्थी को दोनों आरोप पत्रों में उल्लिखित अपराधों के लिए ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है? यहां पर आनुषंगिक प्रश्न यह है कि अपीलार्थी ऐसा अभिवचन कर सकता है अथवा नहीं जब कि उच्च न्यायालय के समक्ष इस पर जोर नहीं दिया गया था ।

(ii) क्या विचारण न्यायालय द्वारा यथा-अधिनिर्णीत दंडादेशों को उपांतरित करने वाला उच्च न्यायालय का आदेश उचित और न्यायोचित है?

(iii) क्या उच्च न्यायालय इस आधार पर तारीख 14 फरवरी, 2017 को सुधार संबंधी आदेश पारित कर सकता था कि तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के मुख्य निर्णय में टंकण संबंधी त्रुटि पाई गई थी?

14. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल सुश्री विभा मखीजा ने इस आशय का जोरदार अभिवाक् किया है कि जिस रीति में इस मामले में विचारण के प्रक्रम से उच्च न्यायालय तक कार्यवाही की गई है उससे यह प्रदर्शित होता है कि अपीलार्थी के साथ अनुचित व्यवहार किया गया है और उसके मामले पर, जहां तक दोनों मामलों में अपीलार्थी की दोषसिद्धि का संबंध है, न तो विचारण न्यायालय द्वारा और न ही उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से कार्यवाही की गई है । विचारण न्यायालय में जो घटनाएं घटी हैं उनसे यह प्रकट होता है कि उसने यह प्रदर्शित करने का भरसक प्रयास किया कि उससे पक्षपातपूर्ण अन्वेषण चित्रित होता है और इसमें न्यायिक पूर्वाग्रह से कार्य किया गया था जिसके परिणामस्वरूप उसे ऋजु विचारण से वंचित किया गया है । उसके अनुसार, दोषसिद्धि अवैध थी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश भी विधि के प्रतिकूल थे । उसके अनुसार, यही गलती उच्च न्यायालय के स्तर पर भी हुई क्योंकि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के काउन्सेल के इस अनुमोदन को लेखबद्ध

करके सरल मार्ग अपनाया कि जहां तक दोषसिद्धि का संबंध है, इस पर जोर नहीं दिया गया था । उसने यह भी दलील दी कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने प्रथमतः दंडादेश को उस अवधि तक घटाकर, जो कि पहले ही भुगत ली गई है, आंशिक अनुतोष प्रदान किया किन्तु इसके पश्चात् उक्त आदेश में सुधार करके गंभीर त्रुटि कारित की, जो कि उसकी शक्तियों के परे था । उसकी दलील यह थी कि पहले से भुगते गए दंडादेश से संबंधित आदेश को किसी भी कल्पनाशक्ति से "टंकण संबंधी त्रुटि" नहीं कहा जा सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा उस बहाने उसमें ऐसी रीति में "सुधार किया गया", जो कि विधि में ज्ञात नहीं है । उसने यह तर्क भी दिया कि भले ही अपीलार्थी को उसके द्वारा पहले से भुगते गए दंडादेश के पश्चात् रिहा करने वाला तारीख 24 दिसम्बर, 2016 का आदेश विधि की दृष्टि से सही नहीं था तो भी ऐसी त्रुटि में किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा सुधार किया जा सकता था क्योंकि उच्च न्यायालय अपने तारीख 24 दिसम्बर, 2016 का निर्णय देने के पश्चात् पदकार्य निवृत्त हो गया था ।

उपर्युक्त दलीलों के आधार पर, विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल का अभिवाक् यह था कि मामले को गुणागुण के आधार पर, अर्थात्, दोषसिद्धि तथा दंडादेश के मुद्दे के संबंध में, नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय के पास भेजा जाना चाहिए, यदि दोषसिद्धि को उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से विचार करने के पश्चात् कायम रखा जाता है ।

15. सुश्री मखीजा ने इस न्यायालय से उपर्युक्त दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए सिफारिश करने के प्रयास के रूप में दो स्तरों पर निवेदन किए । प्रथमतः, यह दलील दी गई थी कि भले ही अपीलार्थी के काउन्सेल ने यह कथन किया था कि जहां तक दोषसिद्धि का संबंध है, वह इस मामले पर जोर नहीं दे रही है तो भी ऐसी छूट को न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और न्यायालय का यह बाध्यकारी कर्तव्य है कि वह मामले को गुणागुण के आधार पर विनिश्चित करे । उसने इस दलील के समर्थन में इस न्यायालय के **जीतू** उर्फ **जितेन्द्र और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले निर्णय के प्रति निर्देश

[1] (2013) 11 एस. सी. सी. 489.

किया, जिसका सुसंगत प्रभाग इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"23. इस प्रक्रम पर, हम यह कथन करने के लिए बाध्य हैं कि जब कोई दोषसिद्ध व्यक्ति कोई अपील फाइल करता है तो उसे इस बात की विधिसम्मत प्रत्याशा होती है कि उसकी अपील पर न्यायालयों द्वारा विधि के अनुसार कार्यवाही की जाएगी । इसके अलावा, उसे दांडिक न्याय परिदान प्रणाली में अंतर्भूत आस्था होती है और न्यायनिर्णयनकारी तंत्र का यह पावन कर्तव्य होता है कि वह उक्त आस्था के प्रति सचेत रहे । उसका अपने काउन्सेल पर सन्निहित विश्वास होता है कि वह दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए उसके मामले को अपनी सर्वोत्तम योग्यता के साथ प्रस्तुत करेगा और मामले के साथ पूरा न्याय करेगा । इसके अलावा, काउन्सेल से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह न्यायालयों को सही निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता प्रदान करे । अतः, न्यायालय की यह बाध्यता है कि वह अपील का विनिश्चय गुणागुण के आधार पर करे और छूट को स्वीकार न करे तथा दंडादेश के संबंध में अग्रिम कार्यवाही करे अन्यथा उक्त ढंग और पद्धति से न्याय परिदान प्रणाली का मूल प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । हम यहां यह उल्लेख करने के लिए बाध्य हैं कि हमारे समक्ष ऐसे अनेक मामले आए हैं जिनमें उच्च न्यायालयों ने दोषसिद्धि को चुनौती न देने का कथन लेखबद्ध करने के पश्चात् दंडादेश की मात्रा की आनुपातिकता के संबंध में कार्यवाही की है । हम स्पष्ट रूप से यह कथन कर सकते हैं कि चूंकि यह विधि की दृष्टि से अननुज्ञेय है इसलिए इसका अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए । यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को, जिस पर पर्याप्त दंडादेश अधिरोपित किया गया है, उसकी स्वाधीनता से, जो कि जीवन की आधार है, वंचित किया गया है जिसे साधारणतः संकुचित नहीं किया जाना चाहिए और इसलिए यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि न्याय के हित का विधि के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार प्रशान्ति से हितसाधन हो ।"

16. उसने यह निवेदन किया कि उपर्युक्त विधिक स्थिति के अलावा, जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, अपीलार्थी द्वारा वकील को ऐसी छूट देने संबंधी कोई अनुदेश नहीं दिए गए थे ।

17. विद्वान ज्येष्ठ अधिवक्ता ने, दूसरे स्तर पर यह दलील देने का प्रयास किया कि इस मामले में ऐसी विभिन्न परिस्थितियां थीं जिनसे यह प्रदर्शित होगा कि यह गुणागुण के आधार पर बहस करने योग्य मामला था और इसलिए दोषसिद्धि के मुद्दे को छोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं था । इस संबंध में उसने इन पहलुओं की ओर संकेत किया, जैसे अनुचित हेतुक, विरोधी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, उन साक्षियों के परिसाक्ष्य में परस्पर-विरोध, स्वतंत्र साक्षियों की परीक्षा न करना जब कि अनिल बडाना की हत्या एक विवाह समारोह में हुई थी जहां अनेक व्यक्ति उपस्थित थे, दूल्हे का पिता पक्षद्रोही हो गया था, जो बरामदगियां की गईं थीं वे अवैध थीं, न्याय-संबंधी परीक्षा काफी विलंब के पश्चात् कराई गई थी और दूसरी हत्या की परिस्थितियां भी संदेहास्पद थीं । उसका भावपूर्ण अभिवाक् यह था कि यदि अपीलार्थी को अवसर प्रदान किया गया होता तो इन पहलुओं पर विस्तृत बहस हो सकती थी, जिसमें अपीलार्थी के पक्ष में अनुकूल निर्णय किए जाने की संभावना थी ।

18. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अपर महासालिसिटर श्री ए. एन. एस. नादकर्णी तथा विद्वान ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी ने उपर्युक्त दलीलों का खंडन किया । उन्होंने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान जब यह पाया गया था कि गुणागुण के आधार पर अपीलार्थी का कोई मामला नहीं बनता था, तब उसके काउन्सेल ने केवल दंडादेश के संबंध में अभिवाक् किया । यह भी तर्क दिया गया था कि काउन्सेल का कथन विनिर्दिष्ट रूप से उच्च न्यायालय के पैरा 6 में लेखबद्ध है और न्यायालय के अभिलेख की पवित्रता बनाए रखनी होगी जिसे उच्चतर न्यायालय में समावेदन करके प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । इस बात पर जोर दिया गया था कि इस कथन के बावजूद उच्च न्यायालय ने, वास्तव में साक्ष्य की परीक्षा की और इस संबंध में अपने अंतःकरण का समाधान किया कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि के

बारे में ठीक निष्कर्ष निकाला था । इस पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी द्वारा उद्धृत निर्णय लागू नहीं होता था । उन्होंने अपीलार्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल के तर्कों का उत्तर देने के संदर्भ में मामले के गुणागुण का भी संक्षेप में उल्लेख किया और यह दलील दी कि अब जो मुद्दे उठाए गए हैं, जिन पर अपीलार्थी के विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल बहस करना चाहते हैं, अभिलेख से भी उद्भूत नहीं होते हैं । यह दलील दी गई थी कि इस प्रकृति का कोई भी प्रश्न अभियोजन साक्षियों से नहीं पूछा गया था और प्रथम बार इस न्यायालय के समक्ष अभियोजन के पक्षकथन में अभिकथित कमियां ढूंढने का प्रयास किया गया था । जहां तक विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश का संबंध है, यह दलील दी गई थी कि **श्रीहरण** उर्फ **मुरूगन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए परिहार संबंधी अनुरोध को स्वीकार करने से पूर्व विचारण न्यायालय का 30 वर्ष के कठोर कारावास की अधिकतम सीमा लगाना पूर्णतः न्यायोचित था ।

19. विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल श्री संजय आर. हेग्ड़े, जो एक मामले में परिवादी की ओर से उपसंजात हुए और श्री प्रशांत भूषण, अधिवक्ता, जो अन्य मामले में परिवादी की ओर से उपसंजात हुए, ने राज्य की उपर्युक्त दलीलों का समर्थन किया । इसके अलावा, यह तर्क दिया गया था कि भले ही तारीख 14 फरवरी, 2017 का सुधार आदेश गलत था तो भी चूंकि अपीलें तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के मुख्य निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई थीं इसलिए यह न्यायालय सदैव इस मुद्दे की परीक्षा कर सकता था कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया दंडादेश का उपांतरण उचित था अथवा नहीं ।

श्री हेग्ड़े ने इस पहलू के संबंध में कि उच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 6 में अंतर्विष्ट कथन को अपीलार्थी द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता था, इस न्यायालय के **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **श्रीनिवास नायक और एक अन्य**[1] वाले निर्णय के प्रति निर्देश किया । उसने **मुतुरामलिंगम और अन्य** बनाम **राज्य, जिसका प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक द्वारा**

---

[1] (1982) 2 एस. सी. सी. 463.

किया गया[1] वाले निर्णय का भी अवलंब लिया ।

20. हम पक्षकारों के काउन्सेलों की दलीलों का उल्लेख करने के पश्चात्, ऊपर विरचित तीन प्रश्नों पर विचार-विमर्श करते हैं । जहां तक प्रश्न सं. 1 का संबंध है, सुश्री मखीजा की इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी के काउन्सेल ने अपीलार्थी के अनुदेशों के बिना उच्च न्यायालय के समक्ष कथन किया था । हम उच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 6 को प्रोद्धृत कर सकते हैं, जिसमें इसके प्रतिकूल कथन किया गया है । वह पैरा निम्नलिखित रूप में है :–

> "6. प्रारंभ में, अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल ने अनुदेशों के आधार पर यह दलील दी है कि अपीलार्थी ने दोषसिद्धि के संबंध में निर्णय की बाबत अपीलों पर गुणागुण के आधार पर जोर नहीं दिया है किन्तु उसने दोनों अपीलों में पारित दंडादेश के आदेश को चुनौती दी है ।"

इसमें यह लेखबद्ध है "कि अपीलार्थी ने दोषसिद्धि के निर्णय की बाबत अपील पर गुणागुण के आधार पर जोर नहीं दिया है" और इसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि यह कथन इस निमित्त प्राप्त "अनुदेशों के आधार पर" किया गया है । उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी के काउन्सेल ने ये अनुदेश प्राप्त किए थे कि मामले पर गुणागुण के आधार पर जोर न दिया जाए । अपीलार्थी ने, निर्णय सुनाए जाने के पश्चात् किसी भी प्रक्रम पर यह आक्षेप नहीं किया था कि उपर्युक्त कथन अनुदेशों के बिना किया गया था । प्रथम बार इन अपीलों में यह कथन किया गया है और विशेष इजाजत याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा टंकण संबंधी त्रुटि मानकर तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के पूर्ववर्ती आदेश में सुधार करते हुए तारीख 14 फरवरी, 2017 के आदेश पारित करने के पश्चात् ही मार्च, 2017 में फाइल की गईं थीं । अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय में पारित दंडादेश संबंधी आदेश उसके पक्ष में था इसलिए वह अपने काउन्सेल के उपर्युक्त कथन से परेशान नहीं था ।

---

[1] (2016) 8 एस. सी. सी. 313.

तथापि, वास्तविकता यह है कि इसके पश्चात् भी उसने इस अभिवाक् के साथ उच्च न्यायालय में समावेदन नहीं किया था कि उसने अपने अधिवक्ता को ऐसा कथन करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया था । इस विषय के संबंध में विधि, श्री हेग्ड़े द्वारा उद्धृत निर्णयों में सुस्थापित है । न्यायालय के अभिलेख पर विश्वास करना होगा । यदि व्यथित पक्षकार के अनुसार कोई त्रुटि है तो व्यथित पक्षकार के पास केवल यह विकल्प है कि वह उस आदेश में सुधार करने की ईप्सा करते हुए उसी न्यायालय में समावेदन करे । ऐसा नहीं किया गया था । अतः, हमें इस आधार पर कार्यवाही करनी होगी कि अपीलार्थी के काउन्सेल ने उपर्युक्त कथन अपीलार्थी के अनुदेशों पर ही किया था ।

21. उक्त कथन के होते हुए भी, उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह इस बात का समाधान करने के लिए अभिलेख की जांच करे कि दोषसिद्धि उचित रूप से लेखबद्ध की गई है अथवा नहीं । हम यह पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा यह कार्यवाही वास्तव में की गई थी । पैरा 6 में कथन अभिलिखित करने के पश्चात्, पैरा 7 से आगे गुणागुण के आधार पर विचार-विमर्श आरंभ हुआ । उच्च न्यायालय ने उन साक्षियों का उल्लेख किया जिनकी परीक्षा अभियोजन द्वारा दोनों मामलों में उसके आरोपों को साबित करने के लिए की गई थी । उसने यह उल्लेख किया है कि अभियोजन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य पर आधारित था और उसके पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा इन साक्षियों के अभिसाक्ष्य के संक्षिप्त वर्णन को अभिलिखित किया गया था । उच्च न्यायालय ने चिकित्सा विधिक (एम. एल. सी.) रिपोर्ट का भी उल्लेख किया है जिसे अभियोजन-पक्ष द्वारा सम्यक् रूप से साबित किया गया था । उसने एफ. एस. एल. विशेषज्ञ (प्राक्षेपिकी विज्ञानी) के परिसाम्य की भी जांच की है । उन पुलिस पदाधिकारियों के, जिन्होंने विभिन्न प्रक्रमों पर, जिसके अंतर्गत अन्वेषण भी है, अपनी भूमिका निभाई है, अभिसाक्ष्य का भी उल्लेख किया गया है । उच्च न्यायालय द्वारा कतिपय अन्य सरकारी साक्षियों के परिसाक्ष्य को भी ध्यान में रखा गया है और उनके प्रति विशेष निर्देश भी किया गया है । उच्च न्यायालय ने ऐसे विचार-विमर्श के आधार पर इन मामलों में से प्रत्येक के संबंध में निम्नलिखित

मताभिव्यक्तियां की हैं :–

> "22. विचारण न्यायालय ने इन साक्षियों के परिसाक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को दोषी ठहराया । यद्यपि अपीलार्थी के काउन्सेल ने यह निवेदन किया था कि वह दोषसिद्धि के संबंध में निर्णय को चुनौती नहीं देता है तथापि, हमने इन साक्षियों के परिसाक्ष्य की सावधानीपूर्वक परीक्षा की है और हमारी राय में, विचारण न्यायालय ने यह सही अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी दोषी है ।
>
> 29. हमारी राय में, विचारण न्यायालय ने विभिन्न साक्षियों के, जिनके अंतर्गत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी भी हैं, परिसाक्ष्य के आधार पर और वैज्ञानिक साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करके ठीक किया है ।"

22. अतः हम इस तर्क में कोई बल नहीं पाते हैं और इस विवाद्यक को अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित करते हैं ।

23. प्रश्न सं. 2 पर विचार करने से पूर्व, यह उचित होगा कि इससे पहले प्रश्न सं. 4 पर विचार कर लिया जाए । हमारा यह मत है कि तारीख 14 फरवरी, 2017 का वह आदेश, जिसके द्वारा तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के मुख्य निर्णय में से दो पंक्तियां हटा दी गईं थीं, न्यायिक संवीक्षा पर खरा नहीं उतरता है चूंकि किसी भी कल्पनाशक्ति से इसे टंकण संबंधी त्रुटि नहीं माना जा सकता है । जब तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय को दंडादेश के मुद्दे के संबंध में, जिसका संक्षिप्त विवरण पहले ही ऊपर दिया जा चुका है, समग्र रूप से पढ़ा जाए तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है उच्च न्यायालय ने अपने विवेकानुसार दंडादेश संबंधी आदेश को उस अवधि तक, जितनी पहले भुगत ली गई है, उपांतरित करना उचित समझा । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों का, जिनके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय के निर्णय भी हैं, उल्लेख किया । इसके पश्चात्, पैरा 61 में उसने स्पष्टतः यह प्रकथन किया कि सभ्य समाज में दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय दांत के बदले में दांत और आंख के बदले में

आंख निकालने की कसौटी नहीं होनी चाहिए । उसने यह भी मत व्यक्त किया कि न्यायालय से ऐसा दंडादेश पारित करने की अपेक्षा थी जो कि न तो निष्पक्ष रूप से घोर हो और न ही प्रत्यक्षतः अपर्याप्त हो । इस प्रयोजनार्थ, इससे अपराध की प्रकृति को सम्यक् रूप से ध्यान में रखने और उत्तेजक और शमनकारी परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाने की अपेक्षा है । इस विचार-विमर्श के पश्चात्, न्यायालय ने दंडादेश संबंधी आदेश को निम्नलिखित रीति में उपांतरित कर दिया :–

> "62. संदर्भात्मक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उपर्युक्त सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् और अपराध की प्रकृति और अपनाई गई पद्धति को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह विश्वास है कि मृत्यु की शास्ति के विकल्प के रूप में किसी विनिर्दिष्ट अवधि के कारावास या दोषसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु तक का उपबंध करने वाला कोई उपांतरित दंडादेश अधिरोपित करने की शक्ति का प्रयोग मामले के तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है । इसके अलावा, इस मामले में अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंड, स्थिति की अपेक्षा के आधिक्य में है और इसलिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा पेश किए गए शमनकारी तथ्य अपीलार्थी पर दया दिखाने के लिए हैं । हमारी यह सुविचारित राय है कि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 30 वर्ष की अधिकतम सीमा को हटाया जाना चाहिए । अतः, हम दंडादेश संबंधी आदेश को अपीलार्थी द्वारा पहले से भुगते गए कारावास की अवधि, अर्थात् 16 वर्ष और 10 मास तक उपांतरित करते हैं ।"

24. यह अभिनिर्धारित करने के लिए और अधिक विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं है कि उपर्युक्त पैरा में अंतिम वाक्य, जिसके द्वारा न्यायालय ने दंडादेश को उस अवधि तक उपांतरित किया जितनी अवधि का कारावास पहले भुगत लिया गया था, अर्थात्, 16 वर्ष और 10 मास, टंकण संबंधी त्रुटि नहीं थी ।

25. यह बात पूर्णतः स्पष्ट है । दोनों प्रथम इत्तिला रिपोर्टों में, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का आरोप था । विचारण न्यायालय द्वारा दोनों आरोपों के संबंध में दोषसिद्धि

अभिलिखित की गई थी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्ट किया गया था । हत्या के अपराध के लिए न्यूनतम दंडादेश आजीवन कारावास है । उच्च न्यायालय, स्पष्टतः उस कारण से दंडादेश को पहले से भुगते गए दंडादेश तक उपांतरित नहीं कर सकता था । अतः, उपर्युक्त रीति में किया गया उपांतरण, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया था, स्पष्टतया त्रुटिपूर्ण है । वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस गलती को महसूस किया और इसलिए उसने तारीख 14 फरवरी, 2017 के आदेश द्वारा इस गलती में सुधार करके आदेश में संशोधन किया । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा उठाया गया वह कदम उसकी अधिकारिता के परे था । यह केवल अपील में ही किया जा सकता था । वह कार्यवाही निश्चित रूप से इस न्यायालय द्वारा आदेश के उस भाग को अपास्त करके की जाती है ।

26. अतः, तारीख 14 फरवरी, 2017 का आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और उसे अपास्त किया जाता है ।

27. अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करते हैं । यह प्रश्न इस कारण विचारार्थ उद्भूत होता है कि तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के मुख्य निर्णय को दोनों परिवादियों तथा राज्य द्वारा चुनौती दी गई है ।

28. इस विवाद्यक का उत्तर देने के लिए, हमसे संबंधित प्रश्न को विनिश्चित करने की अपेक्षा की गई है, अर्थात्, क्या विचारण न्यायालय द्वारा दंडादेश अधिरोपित करने की रीति न्यायोचित थी? पुनरावृत्ति की दृष्टि से, प्रथम आरोप पत्र में प्रथम अपराध की बाबत विचारण न्यायालय ने आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करते समय 30 वर्ष की अधिकतम सीमा लगाई जिसके द्वारा स्पष्ट रूप से यह कहा गया कि उससे पहले परिहार अनुज्ञेय नहीं होगा । पुनः, दूसरे मामले में आजीवन कारावास अधिरोपित करते समय उसने यह कहा कि दंडादेश संपूर्ण जीवन के लिए होगा और वह प्रथम अपराध में पारित दंडादेश के पूरा होने के पश्चात् ही प्रारंभ होगा । दूसरे शब्दों में, उसने क्रमवर्ती दंडादेश न कि समवर्ती दंडादेश अधिनिर्णीत किए ।

29. दोनों मामलों का विचारण एक साथ किया गया था । सामान्य

निर्णय द्वारा दोषसिद्धि लेखबद्ध की गई थी । इसी प्रकार, दंडादेश भी एक सामान्य आदेश द्वारा अभिलिखित किए गए थे । इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर सही किया कि क्रमवर्ती दंडादेश देने का कोई प्रश्न नहीं है और दंडादेश समवर्ती होंगे । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इस मुद्दे पर विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया गया था । उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427 के प्रति भी विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश किया, जिसका सुसंगत प्रभाग निम्नलिखित रूप में है :–

> "धारा 427 – (1) * * * *
>
> (2) जब किसी व्यक्ति को, जो आजीवन कारावास का दंडादेश पहले से ही भोग रहा है, पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर किसी अवधि के कारावास या आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है तब पश्चात्वर्ती दंडादेश पूर्व दंडादेश के साथ-साथ भोगा जाएगा ।"

30. अब हम आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करते समय 30 वर्ष की अधिकतम सीमा लगाने के मुद्दे का उल्लेख करेंगे । यह पहलू अब निश्चायक रूप में **श्रीहरण** उर्फ **मुरूगन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अवधारित किया जा चुका है, जिसमें इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "62. जहां तक परिहार का संबंध है, ये दो प्रकार के होते हैं । एक प्रकार का परिहार वह है जो कैदी द्वारा कारागार नियमों या अन्य सुसंगत नियमों के अधीन अपने अच्छे व्यवहार या उसमें विहित ऐसे अन्य अनुबंधों के अधीन अर्जित किया जाता है । दूसरा परिहार समुचित सरकार द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मंजूर किया जाता है । अतः, पश्चात्वर्ती दशा में, जब धारा 432 के अधीन मुख्य दंडादेश के परिहार की मंजूरी दी जाती है तब और केवल तभी अर्जित परिहार को श्रेय दिया जा सकता है अन्यथा नहीं । इसी प्रकार, आजीवन कारावास की दशा में, जिसका अर्थ किसी व्यक्ति का संपूर्ण जीवनकाल है, जब तक ऐसे दंडादेश का किसी विनिर्दिष्ट

अवधि के लिए लघूकरण नहीं होता तब तक अर्जित परिहार की गणना करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी । दोनों दशाओं में, यह पुनः स्वामी श्रद्धानंद (II) **बनाम** कर्नाटक राज्य (2008) 13 एस. सी. सी. 767 = (2009) 3 एस. सी. सी. (दांडिक) 113 वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर आधारित प्रथम प्रश्न के द्वितीय भाग के उत्तर पर निर्भर करेगा ।

63. इसके बाद जब हम प्रथम प्रश्न के द्वितीय भाग पर विचार करते हैं, जिसका संबंध ऐसे विशेष प्रवर्ग के दंडादेश से है जिन्हें मृत्यु शास्ति के स्थान पर आजीवन कारावास अधिरोपित करके विचार में लिया जाता है, अर्थात्, संपूर्ण जीवनकाल तक या ऐसी अवधि के कारावास के लिए जो पूर्ण जीवनकाल से कम हो सकता है किन्तु 14 वर्ष से अधिक हो सकता है और उस प्रवर्ग को परिहार लागू करने से परे रखना, जो कि स्वामी श्रद्धानंद (II) **बनाम** कर्नाटक राज्य (2008) 13 एस. सी. सी. 767 = (2009) 3 एस. सी. सी. (दांडिक) 113 वाले निर्णय के पैरा 91 और 92 में प्रतिपादित किया गया है और वह आज तक लागू होता है ।"

31. **मुतुरामलिंगम** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय में इस पहलू पर निम्नलिखित शब्दों में, काफी स्पष्ट रूप से विचार किया गया है :–

"23. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) के उपबंधों से यह प्रकट होता है कि संसद् उस विसंगति से पूर्णतः परिचित थी जो कि तब उद्भूत होगी यदि ऐसे किसी कैदी को, जिसे आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडित किया गया है, दो बार ऐसा करने का निदेश दिया जाता है । इसलिए उसने साधारण नियमों में एक अपवाद विरचित किया जिसके द्वारा स्पष्ट रूप से यह माना गया है कि पृथक् रूप से विचारण किए गए और साबित ठहराए गए दो सुभिन्न अपराधों के लिए आजीवन कारावास के दंडादेशों की दशा में दंडादेशों को लगातार चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) के उपबंधों के अलावा, रणजीत सिंह वाले मामले में [रणजीत सिंह **बनाम** चंडीगढ़ संघ राज्य-क्षेत्र,

(1991) 4 एस. सी. सी. 304 = (1991) एस. सी. सी. (दांडिक) 965] इस न्यायालय ने वस्तुतः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आजीवन कारावास से दोषसिद्ध व्यक्ति से शेष जीवन के लिए कारावास विवक्षित होता है इसलिए क्रमवर्ती आजीवन दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किए जा सकते क्योंकि मानव का जीवन एक ही होता है । हमारी राय में, यह तर्क दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 तक भी विस्तारित होना चाहिए भले ही धारा 31 में वस्तुत: संहिता की धारा 427(2) के सदृश उपबंध न किया गया हो । हमारी राय में, इस उपबंध का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि किसी विसंगति या असंगति से बचा जा सके । इस प्रकार निर्वचन करने पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) का यह अर्थ होना चाहिए कि कैदी द्वारा कारित अनेक अपराधों के लिए न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश क्रमानुसार चलेंगे (जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश न दे) सिवाय वहां जहां कि ऐसे दंडादेशों के अंतर्गत आजीवन कारावास आता है, जो कि समवर्ती रूप में चल सकता है और चलना चाहिए । हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए भी बाध्य हैं कि यदि कैदी को एक से अधिक आजीवन कारावास के दंडादेश अधिनिर्णीत किए जाते हैं तो वे एक दूसरे के ऊपर आरोपित हो जाएंगे । इसका अर्थ यह होगा कि यदि कैदी को इनमें से किसी एक दंडादेश में परिहार या लघूकरण का फायदा प्रदान किया जाता है तो ऐसे परिहार का फायदा दूसरे दंडादेश तक स्वतः विस्तारित नहीं होगा ।"

32. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय का वह आदेश, जिसके द्वारा 30 वर्ष की अधिकतम सीमा को हटाया गया था, सही नहीं है और उस भाग को अपास्त करना होगा ।

33. उपर्युक्त विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप निम्नलिखित रूप में निष्कर्ष निकालना होगा :–

(क) तारीख 14 फरवरी, 2017 का आदेश अपास्त किया जाता है ।

(ख) जहां तक तारीख 24 दिसम्बर, 2016 के निर्णय का संबंध है, उच्च न्यायालय द्वारा दंडादेश में किए गए उपांतरण को अपास्त किया जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत, परिहार के बिना 30 वर्ष की अधिकतम सीमा सहित आजीवन कारावास को कायम रखा जाता है । इसके अलावा, उच्च न्यायालय का वह आदेश भी, जिसके द्वारा दंडादेश को पहले से भुगते गए दंडादेश तक उपांतरित कर दिया गया था, अपास्त किया जाता है ।

(ग) उच्च न्यायालय का तारीख 24 दिसम्बर, 2016 का शेष निर्णय कायम रखा जाता है । इसका प्रभाव यह है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि को कायम रखा जाता है । तथापि, दोनों मामलों में दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । इसका अंतिम प्रभाव यह होगा कि अपीलार्थी को दोनों मामलों में इस शर्त के साथ आजीवन कारावास दिया जाता है कि 30 वर्ष का कठोर कारावास पूरा करने तक उसके पास परिहार की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं होगा ।

परिणामतः, अपीलार्थी की अपीलें खारिज की जाती हैं और परिवादियों और राज्य की अपीलें उपर्युक्त सीमा तक आंशिक रूप से मंजूर की जाती हैं और उनका उपर्युक्त रीति में निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

ग्रो.